ISC Paper 2017
Hindi

Maximum Marks: 100
Time Allowed: Three Hours

(Candidates are allowed additional 15 minutes for only reading the paper.
They must NOT start writing during this time.) Answer questions 1, 2 and 3 in Section A and four other questions from Section B on at least three of the prescribed textbooks.
The intended marks for questions or parts of questions are given in brackets [ ].

Section-A
Language (50 Marks)

प्रश्न 1.

Write a composition in approximately 400 words in Hindi on any ONE of the topics given below: [20]

किसी एक विषय पर निबन्ध लिखें जो 400 शब्दों से कम न हो:

(i) स्कूल के प्रधानाध्यापक का पद बहुत ही आदरणीय तथा जिम्मेदारी पूर्ण है। यदि वह पद आपको प्राप्त हो जाए, तो आप उस पद की जिम्मेदारियों को किस प्रकार पूरा करेंगे? विस्तार से लिखें।

(ii) समाज में फैली बुराइयों को दूर करने के लिए कड़े कानून की नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है- विषय के पक्ष या विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

(iii) पर्यटन एक बड़ा उद्योग बन गया है जिसके कारण सांस्कृतिक धरोहरें नष्ट हो रही हैं। इसके बचाव के लिए सुझाव दीजिए ताकि यह उद्योग फलता फूलता रहे। इस विषय के अन्तर्गत विस्तार से लिखें।

(iv) अनुशासित व्यक्ति सुखी और स्वस्थ जीवन जीता है। विवेचन कीजिए।

(v) मनुष्य अनुभव से बहुत कुछ सीखता है। कभी-कभी अनुभव कड़वा भी हो जाता है। क्या आपको कभी कोई कड़वा अनुभव हुआ है? उस अनुभव का वर्णन करते हुए लिखें, आपने उससे क्या सीखा? उसका विस्तृत वर्णन करें।

(vi) निम्नलिखित में से किसी एक पर मौलिक कहानी लिखिए:

(a) मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

(b) एक ऐसी मौलिक कहानी लिखिए जिसका अन्तिम वाक्य हो:

काश! मैंने माँ की बात मानी होती।

यदि मैं प्रधानाध्यापक होता

उत्तर-

(i) इसमें कोई भी संदेह नहीं कि विद्यालय के प्रधानाध्यापक का पद बहुत ही आदरणीय और उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। गंभीरता से सोचा जाए तो यह पद एक निर्माता का पद है जिसमें गरिमा का उत्कर्ष पाया जाता है। पूरा विद्यालय इस पद पर आसीन व्यक्ति की कार्यकुशलता, कर्मठता एवं दूरदर्शिता पर निर्भर करता है। विद्यालय के रूप, स्वरूप तथा गुणवत्ता में उसके प्रधानाचार्य की झलक दिखाई देती है। अच्छा शिक्षाशास्त्री व प्रशासक ही इस पद को सुशोभित कर सकने में समर्थ होता है। वह अपने आदर्श व्यक्तित्व द्वारा समूचे विद्यालय के परिवेश को गरिमा प्रदान करते हुए महिमामंडित करता है।

यदि मैं अपने विद्यालय के प्रधानाचार्य के पद पर स्वयं को रखकर देखता हूँ, तो मेरे मन व मस्तिष्क में कई कल्पनाएँ आती हैं। मैं सोचता हूँ कि यदि इस पद पर मैं स्वयं होता, तो क्या कुछ ऐसा करना चाहता, जो वर्तमान व्यवस्था में नहीं हो पा रहा। मैं यह भी सोचता हूँ कि कौन-सी ऐसी अव्यवस्थाएँ या अनियमितताएँ हैं, जिन्हें मैं अपने कार्यकाल में नहीं देखना चाहता।

विद्यालय का अस्तित्व मूलतः विद्यार्थियों के आगमन की प्रवृत्ति पर आधारित होता है। मेरे भैया बताया करते हैं कि जब वे इसी विद्यालय में पढ़ा करते थे, तब इसमें आठ सौ से भी ऊपर संख्या में विद्यार्थी पढ़ते थे। आज यह संख्या घटकर पाँच सौ के आसपास रह गई है। मैं सबसे पहले यह संख्या सम्मानजनक स्तर तक पहुँचाना चाहूँगा। इसके लिए विद्यालय की व्यवस्था को आकर्षक बनाया जाएगा तथा विद्यालय भवन की मरम्मत कराई जाएगी।

हमारे विद्यालय में खुले उद्यान जो बेकार पड़े हैं, उन्हें विभिन्न प्रकार के पौधों व फूलों से सुशोभित करूँगा। गरमियों के दिनों में जल की आपूर्ति प्रायः ठप रहती है। बच्चों को ठंडा पानी तो दूर की बात, गरम पानी भी उपलब्ध नहीं होता। मैं विद्यालय में पानी तथा बिजली का उचित प्रबंध करवाऊँगा।

विद्यालय का स्वरूप गुणात्मक बनाने के लिए तीन स्तरों पर परिश्रम व दूरदृष्टि की आवश्यकता होती है-पढ़ाई, खेलकूद तथा सांस्कृतिक पहलू। मैं ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति करना चाहूँगा, जो विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिए पूर्णतः प्रशिक्षित हों। वर्तमान अध्यापकों को प्रेरित करूँगा कि वे मन लगाकर विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम को सहज व सरल ढंग से समझाएँ। खेलकूद के लिए अलग-अलग खेलों के लिए प्रशिक्षक रखे जाएंगे। खेलों का सामान भी खरीदा

जाएगा। क्रीडा क्षेत्र को समतल बनाकर अभ्यास करवाया जाएगा। सांस्कृतिक कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए कोई श्रेष्ठ, कुशल व निष्ठावान अध्यापक प्रभारी बनाया जाएगा, ताकि विद्यालय पढ़ाई और खेल के साथ-साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी आगे बढ़े।

मैं पुस्तकालय को समृद्ध करूँगा और वहाँ कंप्यूटर-प्रणाली लागू करूँगा, ताकि विद्यालय तकनीकी क्षेत्र में पिछड़ा न रहे। मेधावी परंतु गरीब विद्यार्थियों, खिलाड़ियों तथा कलाकारों को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक, पुस्तकीय व छात्रवृत्ति के रूप में सहायता दी जाएगी। इससे उनकी प्रतिभा में चार चाँद लगेंगे।

विद्यार्थियों को चिकित्सा संबंधी प्राथमिक सहायता देने के लिए प्राथमिक चिकित्सा की उचित व्यवस्था की जाएगी। प्राकृतिक चिकित्सा व व्यायाम के लिए रखे गए अध्यापक को प्रेरित करके इस क्षेत्र की गतिविधियाँ पुनः चालू करवाऊँगा। प्रयोगशालाओं का स्वरूप भी सुधारूँगा ताकि विज्ञान के विद्यार्थी हीन-भावना का अनुभव न करें। इन कार्यों को करने के बाद मेरा विश्वास है कि हमारा विद्यालय नगर के ही नहीं, बल्कि प्रांत के श्रेष्ठ विद्यालयों की सूची में अपना नाम लिखवा सकेगा।

नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता-

(ii) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का निर्माण करने वाली एक अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण इकाई है। उसी पर समाज का स्वरूप निर्भर करता है। उसके सत् तथा असत् व्यक्तित्व का समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है। आज प्रायः कहा जाता है कि हमारा समाज तरह-तरह की बुराइयों में जकड़ता जा रहा है। समाजविद् कहते हैं कि समाज में फैली बुराइयों को दूर करने के लिए कड़े कानून की नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों की आवश्यकता है।

आज व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। नैतिकता के गिरते स्तर के कारण प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अव्यवस्था अथवा भ्रष्टाचार फैला हुआ है। यदि व्यक्ति के स्तर पर नैतिक मूल्यों को अपनाया जाए तो समाज तथा राष्ट्र में आदर्श चरित्र एवं भ्रष्टाचार रहित जीवन का निर्माण संभव है।

'नैतिक' शब्द के कोशगत अर्थ हैं- नीति संबंधी, आध्यात्मिक तथा समाज विहित। ये तीनों अर्थ शील, आचार अथवा आचरण को केंद्र में रखकर किए गए हैं। नैतिकता का संबंध भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों से है। समाज में रहते हुए मानव को अनेकानेक नीतियों का पालन

करना होता है। मानव के श्रेष्ठ गुण व नैतिकता एक दूसरे पर निर्भर हैं। बिना श्रेष्ठ गुणों के नैतिकता नहीं और बिना नैतिकता के श्रेष्ठ गुण नहीं आ सकते। नैतिकता ही मनुष्य को सदाचार के निकट और भ्रष्टाचार से दूर ले जाती है।

महापुरुषों तथा दिव्यात्माओं ने अपने आदर्श और आचरण द्वारा इस विश्व को विलासिता तथा अनैतिकता के कीचड़ से निकाला। महान चरित्र सदैव अनुकरणीय होते हैं, चाहे वे यूनान के सुकरात हों या भारत के स्वामी दयानंद, विवेकानंद जैसे महापुरुष हों। हमारे यहाँ वैदिक युग से ही नैतिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। आज शासन, प्रशासन तथा ज्ञान-क्षेत्रों में अनैतिकता के कारण ही भ्रष्टाचार का दानव अपनी आकृति व शक्ति बढ़ा रहा है। मन को स्थिर, सुदृढ़ तथा न्यायसंगत बनाने के लिए शुद्ध आचार की आवश्यकता है। पशु-स्तर से ऊँचा उठने की कसौटी नौतिकता है। ऋषियों-मुनियों ने आचरण, त्याग और उच्चाशय को जनमानस में रखकर मानवता के उद्धार का प्रयास किया।

अर्थ-प्रणाली के कारण व्यक्ति को नैतिक पतन हुआ है। आज मनुष्य सिद्धियों के पीछे भाग रहा है। वह अपनी उच्च संस्कृति की श्रेष्ठ साधनाओं को भूलता जा रहा है। मन की चंचलता, लोभ, उद्विग्नता, आशाभंग, दुविधा, पलायन आदि मनुष्य को भ्रष्टाचार की ओर ले जा रहे हैं। वैदिक शिक्षा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार फल मानव को सन्मार्ग पर अग्रसर करने के लिए स्वीकार किए गए हैं। आज का मानव केवल अर्थ और काम के पीछे अंधा हो रहा है। उसे अर्थ या पैसा चाहिए और पैसे से वह काम अर्थात् भ्रष्ट आचरण की ओर बढ़ता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि माता-पिता से ही बच्चे शुद्ध-अशुद्ध आचरण सीखते हैं। परिवेश को शुद्ध करने से नैतिक बल बढ़ेगा और भ्रष्टाचार का अंत हो सकेगा। परिवार में भाई-भाई; भाई-बहन, बहन-बहन तथा अन्य संबंधों में शुद्ध आदर्श अपनाने से समाज शुद्ध होगा।

सामाजिक स्तर पर नैतिक शिक्षा का महत्त्व और भी अधिक है। लोक-व्यवहार को जाति, वर्ग व वर्ण के संघर्ष आदि से मुक्त बनाया जाए। लोक-व्यवहार में परस्पर सहयोग, परोपकार, सहायता व सहनशीलता को महत्त्व देना होगा। किसी की भौतिक उन्नति को देखकर प्रतियोगिता का भाव होना चाहिए। जैसे-तैसे धन प्राप्ति या सुख ग्रहण करने के अनैतिक मार्ग नहीं अपनाने चाहिए। नियमबद्ध नैतिकतापूर्ण जीवन ही श्रेष्ठ जीवन होता है। जो लोग सुगम मार्गों को अपनाकर ऊपर उठना चाहते हैं, वे ही भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। शासन-व्यवस्था में तभी नैतिकता आएगी यदि मतदाता अपना सही दायित्व समझेंगे तथा नैतिक आचरण वाले नेता का चुनाव करेंगे। नैतिक मूल्य अपनाने से भ्रष्ट नेता दूर हटेंगे। हमें यह सोचना है कि धन की प्राप्ति की अपेक्षा धन की

शुद्ध प्राप्ति कहीं अधिक महत्त्व रखती है। नीच व भ्रष्ट कर्मों से प्राप्त किया गया धन मनुष्य को भ्रष्ट बनाता है। तभी तो कहा गया है कि 'जैसा अन्न, वैसा मन'। अतः हमें स्वयं से नैतिकता का पाठ आरंभ करना चाहिए ताकि हम शुद्ध एवं आदर्श समाज की संरचना कर सकें।

पर्यटन तथा सांस्कृतिक संरक्षण –

(iii) मानव जीवन दिन प्रतिदिन जटिल से जटिलतर होता जा रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में हम स्वयं एक निर्जीव मशीन बनते जा रहे हैं। इकरसता के इस जीवन को तोड़ने के लिए कई प्रकार के मनोरंजन के साधन सुझाए जाते हैं। घर-परिवार की आकांक्षा और अपनी इकरसता को दूर करने के लिए पर्यटन को एक उत्तम व कारगर साधन माना जाता है।

पर्यटन से जहाँ हम अपने जीवन की इकरसता से पार पाते हैं वहीं जानकारियों का एक महत्त्वपूर्ण खज़ाना भी पा जाते हैं। हम अपने इतिहास, धर्म, रीति-रिवाज़, रहन-सहन आदि से जुड़े विभिन्न ज्ञान के धरातलों पर खड़े होकर अपना अतीत तथा वर्तमान समझने में सक्षम होते हैं। हमारी विभिन्न जिज्ञासाओं को उत्तर भी इसी पर्यटन से प्राप्त होता है।

आजकल पर्यटन एक उद्योग बनता जा रहा है। देश-देशांतर के स्मारकों, स्थलों आदि को आधार बनाकर देश-विदेश में भ्रमण को बढ़ावा मिलने लगा है। सांस्कृतिक धरोहरों को केंद्र में रखकर व्यवसाय होने लगा है। इससे सांस्कृतिक धरोहर तथा स्मारक क्षतिग्रस्त होने लगे हैं।

आज की भागम-भाग भरी दिनचर्या हमें पर्यटन के लिए भी प्रेरित करती है। मानव अपने परिवेश से हटकर दूर-दराज़ के सौंदर्य, पर्यावरण तथा संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहा करता है। विभिन्न जीवन-पद्धतियों के अध्ययन में, विभिन्न देशों के भ्रमण में, नाना प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों को देखने में, नई-नई जीवन-शैलियाँ देखने में तथा ऐतिहासिक सांस्कृतिक-धार्मिक स्थलों को देखने में उसे विशेष उत्साह, आनंद तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है। यद्यपि किसी स्थान की जानकारी दृश्य माध्यमों से भी प्राप्त की जा सकती है, पर साक्षात् दर्शन का तो आनंद ही अनूठा है। केवल चित्र देखकर हम हिमालय की हिममंडित शिखरों के सौंदर्य से अभिभूत नहीं हो सकते। यह अनुभव तो इन स्थानों के भ्रमण या दर्शन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। पर्यटन व्यक्ति के विचारों को उदार, दृष्टिकोण को विस्तृत तथा हृदय को विशाल बनाता है। किसी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की भाषा धर्म, संस्कृति, जीवन-दर्शन तथा आचार-विचार में कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं? कौन-कौन-सी अच्छाइयाँ हैं- यह केवल देशाटन द्वारा ही जाना जा सकता है।

पर्यटन या देशाटन द्वारा ज्ञान-प्राप्ति तो होती ही है, इसके अतिरिक्त मनोरंजन तथा स्वास्थ्य-लाभ भी मिलता है। यही कारण है कि विशेष दशाओं में चिकित्सक रोगियों को पर्वतीय स्थानों पर ले जाने का परामर्श देते हैं। देशाटन से जलवायु परिवर्तन हो जाता है जिससे शरीर में नए उत्साह तथा स्फूर्ति का संचार होता है।

प्राचीन काल में पर्यटन या देशाटन के लिए इतनी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं जितनी की आज हैं। आजकल एक स्थान से दूसरे स्थान तक आना-जाना अत्यंत सुगम तथा सरल हो गया है। विभिन्न देशों की सरकारें पर्यटन या देशाटन को बढ़ाने के लिए पर्यटकों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ तथा रियायतें देती हैं। विभिन्न देशों तथा स्थानों के संबंध में विस्तृत जानकारी भी पहले से उपलब्ध रहती है।

अतः यह स्पष्ट है कि देशाटन केवल राष्ट्रीय एकता दृढ़ करने में ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव, मैत्री तथा सहयोग बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्यटन' आजकल एक व्यवसाय के रूप में फल-फूल रहा है परन्तु इसके कुप्रभावों को देखने की भी आवश्यकता है। आज के पर्यटन व्यवसायी सांस्कृतिक स्मारकों की देखभाल की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। वे अपने कारोबार की चकाचौंध बढ़ा रहे हैं। सांस्कृतिक धरोहरों को तरह-तरह से हानि पहुँचाई जा रही है। व्यक्ति, समाज तथा देश के स्तर पर इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रदूषण तथा भू-दृश्य का विगड़ना सबसे बड़ा खतरा है। पर्यटक प्रायः इन पर्यटन स्थलों पर भरपूर गंदगी छोड़कर अपनी राह पकड़ लेते हैं। धरोहरों की दीवारों व स्तम्भों पर अपना नाम लिख देते हैं या गोद-गोदकर स्मारकों को क्षतिग्रस्त कर जाते हैं। अतः हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि इन सांस्कृतिक धरोहरों को पर्यटन या व्यवसाय बनाने के साथ-साथ इनकी साज-संभाल की भी चिंता करेंगे।

अनुशासन का महत्त्व-

(iv) यह विचार अक्षरशः सत्य है कि अनुशासित व्यक्ति ही सुखी और स्वस्थ जीवन जीता है। अनुशासन का सामान्य अर्थ है व्यवस्था या आज्ञा के अनुसार चलना। यह शब्द अनु + शासन के योग से बना है। 'अनु' का अर्थ है पीछे या अनुसार और 'शासन' का अर्थ आज्ञा या व्यवस्था होता है। अतः अनुशासन का अर्थ वश में रखना, व्यवस्था का पालन करना तथा नियमों का अनुसरण करना आदि के रूप में ग्रहण किया जाता है। सभ्यता के विकास के साथ मानव ने अपने उत्कर्ष के लिए अनेक प्रकार के नियम तथा विधि-निषेध बनाए और प्रचारित किए। मानव जानता था कि बिना नियमबद्धता के कुछ भी निर्माण या विकास संभव नहीं। पूरी प्रकृति अर्थात् पृथ्वी, चंद्र, सूर्य आदि नियमों में बंधे हैं। यदि सूर्य मनमानी करने लगे तो रात-दिन का विधान ही

बदल जाएगा। ऋतु परिवर्तन भी विधान के अनुसार ही क्रियाशील होता है। यह नियमबद्ध व्यवहार ही अनुशासन है। मानव की सभी क्रियाएँ अनुशासित रहती हैं, जैसे सोना, जागना, नित्य-कर्म, खाना-पीना, काम करना, मनोरंजन आदि।

अनुशासन सिद्धांत के साथ-साथ व्यवहार भी है। जब तक व्यवहार में न लाया जाए, तब तक अनुशासन के सिद्धांत निष्फल हैं। इन सिद्धांतों को व्यवहार में लाने की सर्वोत्तम अवस्था विद्यार्थी जीवन ही है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस काल में शैशव की प्रवृत्तियाँ अभी पत्थर की लकीर नहीं बनी होती हैं। यह काल उस शिशु वृक्ष की शाखाओं की तरह होता है, जिन्हें मनचाही दिशा में मोड़ा जा सकता है। पूर्ण विकसित प्रवृत्तियाँ या आदतें कभी नहीं बदलतीं। कवि बिहारी ने कहा भी है-"कोटि जतन कोऊ करै, परें न प्रकृतिहिं बीच।" अर्थात् स्वभाव या प्रकृति पक जाने पर उसे बदलना दुष्कर है। जैसे प्रौढ़ हो चुके वृक्ष की शाखाओं को मोड़ने का प्रयास करें, तो वे टूट भले ही जाएँ परंतु मुड़ेंगी नहीं। विद्यार्थी को अनुशासन का व्यवहार सबसे पहले घर से प्राप्त होता है। घर में समय पर जागना, खाना-पीना, पढ़ना, खेलना, मनोरंजन करना, सोना, गृहकार्य करना आदि अनुशासन का व्यावहारिक रूप है।

विद्वानों ने अनुशासन को दो प्रकार का स्वीकार किया है। पहला अनुशासन है- 'स्व-अनुशासन' अर्थात् स्वयं को बिना किसी दबाव के नियमबद्ध करना। संतों व योगियों ने इसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि इसमें संयम, इंद्रिय-निग्रह, ध्यान आदि आते हैं जिनका संबंध भीतरी संकल्प से है। अनुशासन का दूसरा प्रकार बहिरंग अनुशासन का है जिसे विभिन्न क्षेत्रों में व्यवस्था के भय के अधीन रहकर अपनाते हैं. समय पर तैयार होना, बस पकड़ना, विद्यालय पहुँचना, कक्षा में जाना आदि बहिरंग अनुशासन हैं। ध्यान केंद्रित करके अध्ययन करना, मनन करना, सकारात्मक मूल्यों व ज्ञान को आत्मसात करना आत्मानुशासन है। विद्यार्थी के लिए ये दोनों अनुशासन महत्त्वपूर्ण हैं।

आजकल विद्यार्थी-वर्ग में अनुशासनहीनता बढ़ रही है। इसका कारण बदलता हुआ परिवेश तथा नवीन जीवन मूल्यों का अनुकरण है। पाश्चात्य संस्कृति तथा दूरदर्शन के विदेशी चैनलों ने हमारे विद्यार्थी को भ्रमित करना आरंभ कर दिया है। आज का विद्यार्थी परंपरागत भारतीय आदर्शों व अतीत के श्रेष्ठ मूल्यों को भूलता जा रहा है। वह अपनी संस्कृति से उखड़ता जा रहा है। पाश्चात्य का अनुकरण उसे भ्रष्ट व अनुशासनहीन बना रहा है। यही कारण है कि आज के युवावर्ग में अराजकता बढ़ रही है। संतोष मिट रहा है। सहनशीलता व धैर्य जैसे गुण क्षीण होते जा रहे हैं।

अनुशासनहीनता का दूसरा बड़ा कारण हमारी दूषित शिक्षा पद्धति है। शिक्षा एक व्यवसाय बन गई है, जिसमें पैसा कमाना मुख्य लक्ष्य है। अध्यापक अपने विद्यार्थी को जीविका का माध्यम समझने लगे हैं। अत: वे अपने विद्यार्थी को श्रेष्ठ बनाने का दायित्व नहीं निभाते। तीसरा मुख्य कारण हमारे कुछ भ्रष्ट नेता हैं जो विद्यार्थियों का दुरुपयोग करते हैं। वे उनका मनमाने ढंग से उपयोग व शोषण करते हैं। वे अपने-अपने दल के प्रति विद्यार्थियों की रुचि को जैसे- तैसे मोड़ना चाहते हैं। इसके लिए वे उकसाने व भड़काने का काम करने से भी नहीं चूकते। जब राजनेता ही तोड़-फोड़ की राजनीति सिखाने लगे, तो विद्यार्थी का अनुशासनहीन हो जाना स्वाभाविक है।

मेरे जीवन का एक कटु अनुभव-

(v) मानव अनुभव से बहुत कुछ सीखता है। इसीलिए अनुभव को पुस्तकीय ज्ञान से ऊपर माना जाता है। हमारे जीवन में मधुर-कटु- दोनों प्रकार के अनुभव पाए जाते हैं। कभी-कभी हमारा अनुभव इतना कड़वा हो जाता है कि हम स्वयं अपने ऊपर हँसते हैं। ऐसा ही एक कटु अनुभव मेरे जीवन में भी हुआ है।

जून महीने के दूसरे रविवार की बात है। हम सभी परिजन अपने घर में छुट्टी का आनंद ले रहे थे। बड़े भैया भाभी और उनका आठ मास का शिशु करण भी हमारे बीच थे। वे कल रात ही आए थे ताकि रविवार का आनंद लिया जा सके। प्रातः के नौ बजने वाले थे। हम सभी चने पूरियाँ खाकर गप्पें हाँक रहे थे कि तभी टांडा से हमारे मामा जी का फ़ोन आ गया। फोन पिता जी ने ही सुना। सुनते ही वे गंभीर हो गए। फिर हमारे पास आकर कहने लगे कि उन्हें अभी टांडा जाना होगा। हम डर गए कि कहीं कोई अनहोनी तो नहीं घट गई। तभी उन्होंने विस्तार सहित बताया जिसका सार यह था कि सपना दीदी के लिए कोई वर देखने अभी जाना होगा। लड़का अच्छा है। वह बंगलूरू से आया तो किसी अन्य कन्या को देखने के लिए था परंतु कन्या ने उसे नापसंद कर डाला। अतः वह कोई और कन्या देखकर ही जाना चाहता है। उसके पास केवल तीन बजे तक का समय है। तीन बीस पर उसकी गाड़ी छूट जाएगी।

भैया ने कहा कि यह तो शुभ समाचार है। उनके पास जीप है। एक घंटे में ही टांडा पहुँच जाएँगे। सुनते ही सभी तैयारी करने लगे। सपना ब्यूटी क्लिनिक जाने का हठ कर बैठी तो भैया पहले उसे छोड़ने चले गए।

ग्यारह बजे सभी तैयार खड़े थे। भैया सपना को लेकर ग्यारह बीस पर आए तो हम सभी जीप में सवार होकर टांडा की ओर चल पड़े। गलियाँ पार करते ही भैया ने घड़ी देखकर कहा कि हम लोग साढ़े बारह बजे तक अवश्य पहुँच जाएँगे। अभी भोगपुर से थोड़ा आगे निकले थे कि जीप रोकनी पड़ी। मैं पीछे बैठा करण के साथ अठखेलियाँ कर रहा था। मैंने पूछा तो भैया बोले आगे भारी जाम-सा लगा दिखाई दे रहा है। मैंने करण भाभी की गोद में डाला और नीचे उतर गया। इधर-उधर पूछा तो यही उत्तर मिला कि आगे रास्ता जाम है। कारण किसी को पता न था।

मैं आगे बढ़ा। लगभग एक किलोमीटर पैदल चलने के बाद पता चला कि परसों की भारी बरसात में पुल बह गया है। दोनों ओर आर-पार जाने के लिए पैदल चलना पड़ेगा। इधर की बसें उधर की बसों को अपनी सवारी दे रही हैं और उधर की बसें इधर की बसों को। निजी वाहन या तो लौट जाते हैं। या फिर रास्ता खुलने की प्रतीक्षा में हैं। मैंने काम पर लगे विशाल श्रमिक-समूह में से एक से पूछा कि कब तक रास्ता खुल सकेगा। इस पर वह बोला कि कल तक तो खुल ही जाएगा। शाम तक भी खुल सकता है।

मैं यह अप्रिय समाचार लेकर जीप की ओर उदास मन व ढीले कदमों से लौटने लगा। समाचार सुनकर भैया ने कहा कि वे मामा जी को फोन कर देते हैं कि विवशता में लौटना पड़ रहा है। फोन पर मामाजी ने कहा कि लड़का हाथ से निकल सकता है। ऐसा वर शायद फिर सपना के लिए सपना ही हो जाए। अतः हम लोग जैसे-तैसे सपना को जरूर पहुँचवाएँ, भले ही बस द्वारा।

गीली कच्ची मिट्टी, कीचड़, रेत और पत्थरों से जूझते हुए हम लोग पैदल ही खड्ड के पार की ओर चलने लगे। जीप एक सरदार जी के मकान के आगे खड़ी कर दी थी। खड्ड पार करने में हमारे पसीने छूट गए। सभी के पास सामान था। भाभी के पास करण था। चार कदम चलकर ही प्यास लग जाती। पानी की बोतलें, करण के दूध की बोतल और फल आदि सब पिछले एक घंटे में समाप्त हो चुका था। खड्ड के पार जाकर हम उधर टांडा की ओर लौटने वाली बस की प्रतीक्षा करने लगे। कड़कती धूप, खड्ड का पानी। दूर तक छायादार पेड़ तो थे परंतु वे सब बरसात में बह गए थे। करण चीखने-चिल्लाने लग गया। एक भली स्त्री ने उसके लिए कुछ बिस्कुट दिए तो वह थोड़ी देर के लिए शांत हुआ।

खचाखच भरी बस में सवार होना हिमालय पर चढ़ने के समान था। फिर भी हमने हिम्मत न हारी। जैसे-तैसे अपने आपको ठूंस-ठासकर टांडा पहुँचे। सभी बदहवास थे। उतरते ही पानी पीया। तभी एक बड़ी कार का ड्राइवर हमारे पास आया और गौर से देखकर पूछने लगा

“जालंधर से आए हैं। भैया ने कहा-” जी, हाँ।” उसने कहा – ” चलिए, साहब ने गाड़ी भेजी है।”

कार में सवार होकर मानो हम धन्य हो गए। कार चलती गई। तभी मैंने भैया से पूछा-

“कितना लम्बा रास्ता है?” भैया बोले- “आराम से बैठो, घर जाकर पूछना जो भी पूछना है।”

हमारे होश तब गुम हुए जब कार एक अज्ञात भवन के आगे रुकी और ड्राइवर बोला-“लीजिए, आ गया कटारिया साहब का महल।’ हमने स्वयं को ठगा-सा महसूस किया। वह मामा जी का नहीं, किसी और का घर था। बिना पूछे कार में बैठना हम सभी शिक्षितों को मूर्ख सिद्ध कर गया। उस दिन के बाद हम फूंक-फूंककर कदम रखने लगे।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।-

(vi) (a) किसी देश में अमरसेन नाम का एक राजा था। वह बहुत वीर और प्रजा का हित चाहने वाला था। उसकी प्रजा भी उसे बहुत चाहती थी।

एक बार किसी बात से नाराज़ होकर उसके पड़ोसी राजा ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा अमरसेन अपनी सेना के साथ बहुत वीरता से लड़ा परंतु भाग्य ने उसका साथ न दिया। युद्ध में उसकी पराजय हुई। उसके बहुत से सैनिक मारे गए। शत्रु के सैनिक उसे जीवित पकड़ना चाहते थे पर वह किसी तरह युद्धभूमि से बचकर वहाँ से भाग निकला।

शत्रु से बचता-बचाता वह एक जंगल में जा पहुँचा। वह छिपकर एक गुफ़ा में रहने लगा। गुफ़ा में रहते-रहते उसे अपने परिवार व देश की बहुत याद आती था। वह किसी तरह अपना खोया राज्य पुनः पाना चाहता था, परंतु उसे कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। वह मन हारकर बैठ गया। एक दिन वह गुफ़ा में बैठा कुछ सोच रहा था, तभी उसकी दृष्टि एक मकड़ी पर पड़ी। वह दीवार पर चढ़ने का प्रयास कर रही थी। राजा ने देखा मकड़ी ऊँचाई पर चढ़ती और फिसलकर नीचे गिर पड़ती। मकड़ी ने अनेक बार प्रयत्न किए। हर बार मकड़ी जब नीचे गिर जाती तो अमरसेन को उस पर दया आ जाती।

वह सोचने लगा कि बहुत हो चुका अब शायद मकड़ी की हिम्मत ने जवाब दे दिया है। अब वह दीवार पर चढ़ने की कोशिश नहीं करेगी। पर वह यह देखकर हैरान रह गया कि मकड़ी ने फिर से हिम्मत जुटाई और इस बार दीवार पर चढ़ने में सफल हो गई। यह देखकर अमरसेन को

सुखद आश्चर्य हुआ। इस घटना ने उस पर गहरा प्रभाव डाला। उसका खोया हुआ विश्वास फिर से जाग उठा। उसने सोचा, जब एक मकड़ी बार-बार गिरने पर भी कोशिश कर दीवार पर चढ़ सकती है, तो भला मैं अपने शत्रुओं को क्यों नहीं हरा सकता।

राजा अमरसेन की आँखों में आशा की चमक आ गई। उसने नए जोश एवं साहस के साथ अपनी सेना तैयार की और शत्रु पर धावा बोल दिया। शत्रु अचानक हुए इस हमले के लिए तैयार नहीं था। शत्रु की हार हुई अमरसेन को अपना राज्य फिर से मिल गया। किसी ने ठीक कहा है-

"मन के हारे हार है मन के जीते जीत।"

काश! मैंने माँ की बात मानी होती-

(b) यह उन दिनों की बात है जब हमने अपने जर्जर-से मकान को छोड़कर एक नवनिर्मित कालोनी में किराए का घर लिया था। घर के सामान को विधिवत् रूप से बाँधा जाने लगा। रविवार को नए घर में जाना तय हुआ।

पिताजी कल शाम ही एस्टेट एजेंट से कोठी की चाबियाँ ले आए थे। प्रात:काल ट्रक और लदानकर्मी आने वाले थे। मैंने मम्मी के साथ सूर्योदय से पूर्व ही उठकर दोपहर का भोजन पकाकर पूरी रसोई समेट दी थी। इतने में ट्रक वाले आए और सामान लदने लगे।

सामान लदने लगा तो पापा ने हमें चाबियाँ देकर कहा कि वह लोग ऑटोरिक्शा में जाकर घर को खोलें और झाड़ लगा दें। वे ट्रक के साथ आएंगे। हमें जैसे इसी आदेश की प्रतीक्षा थी। मेरे भैया तो नाच ही उठे। वे तुरंत एक ऑटोरिक्शा ले आए और हम उस पर दुपहर का टिफिन लिए सवार हो गए। हमें मानो पंख लग गए थे और हम उड़ रहे थे।

टैगोर पार्क, कोठी नं: 32। वाह! क्या भव्य कोठी है। हमने ऑटो वाले को किराया दिया और अंदर जाने लगे। परन्तु यह क्या, चाबी तो लग ही नहीं रही। बहुत प्रयास किया। मम्मी ने भी ज़ोर लगाया। कोई अंतर नहीं आया। तभी पड़ोसन दिखाई दी। उसने पूछा हम लोग कौन हैं? जब उसे पूरा मामला समझाया गया तो वह बोली-वे लोग भी हमारे पास चाबियों का गुच्छा दे गये थे। आप ट्राई कर लो। हो सकता है कि दलाल ने आपको किसी और कोठी की चाबियाँ भूल कर दे दी हों।"

हम पड़ोसिन द्वारा दी गई चाबियों को लगाते गए और हमारे सामने गेट, मुख्य द्वार, शयनकक्ष आदि सब खुलते गये। वाह! कितनी करीने से बनी कोठी है। इतने कमरे ! पापा ने तो उन लोगों को ठग ही लिया। दो हजार में तो दो कमरों का मकान नहीं मिलता और यहाँ तीन शयनकक्ष, एक बैठक, एक बड़ी लॉबी, स्टोर, पोर्च और गैरेज थे।

हम अपने उत्साह के चरम पर थे। झाड़ लगाकर पूरे घर को पानी और फेनायल से धो दिया। पंखे छोड़ दिये ताकि फर्श सूख जाए। तब खिड़कियों दरवाजों में जाले पोंछने लगे। मैं मम्मी से बार-बार कोठी की और पापा की प्रशंसा कर रही थी। पापा ने सूझबूझ से ऐसा मकान खोजा था। जिसके मालिक अपार धनपति होंगे-तभी तो इतने पंखे, टयूब लाईट, पानी की मोटर-सब लगे लगाए छोड़ गए थे। कोई और होता तो सब कुछ निकाल कर ले जाता।

पापा नहीं आए। दुपहर हो आई। ट्रक नहीं आया। हम थक गये थे। ट्रक की प्रतीक्षा में बाहर गेट पर आ गए। ट्रक का कोई अता-पता नहीं था। हमारे कपड़े मज़दूरों जैसे मटियाहे और गंदे हो चुके थे। पापा की कोई खोज-खबर न थी। मम्मी के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ उभर रही थीं। साफ़-सफ़ाई में हम भूल ही गएं थे कि ट्रक को यहाँ पहुँचने में दो घंटे से अधिक समय नहीं लगना चाहिए। हम तो पंद्रह मिनट में आ गए थे परन्तु बड़ी गाड़ियाँ बाई पास से होकर मुख्य मार्ग से इस कलोनी की ओर आ सकती हैं। फिर भी दो घंटे बहुत थे। यहाँ तो दुपहर भी बीत रही थी।

इस बीच पड़ोसन चाय, समोसे और घर के बने पकौड़े ले आई। हमें भूख लग आई थी। हमने चाय तो नहीं पी, परन्तु पकौड़े भरपेट खाए। मम्मी ने केवल चाय ली। वे घबरा रही थी। पड़ोसिन ने सांत्वना के स्वर में कहा-: आखिर मशीनरी है, खराब भी पड़ सकती है। पुलिस कुत्तों जैसे सूंघती रहती है... क्या पता उसी ने तलाशी के बहाने रोक लिया हो।”

मम्मी ने इतना कहा- “मैं न कहती थी कि घर बदलने से पहले मोबाइल ले लो। पर तुम मेरी सुनती ही नहीं हो। आज पास में मोबाइल होता तो झट से पता कर लेती।”

तभी मेरे मस्तिष्क में एक युक्ति सूझी। मम्मी के पर्स में पापा का दिया कार्ड था। एस्टेट एजेंट का फोन व पता उसी कार्ड पर था। मैंने कार्ड देखा तो पता पास ही का था। मैं अपने भाई के साथ उधर निकल पड़ी। मम्मी में चलने की शक्ति नहीं थी।

एस्टेट एजेंट ने सारी कथा सुनकर हँसना शुरू कर दिया। मैं हैरान थी कि यह कैसा दलाल है जो अपने ग्राहक की मुसीबत में भी खिल्ली उड़ा रहा था। तभी उसने संयत होकर कहा-"गुड़िया रानी! आपको टैगोर नगर जाना था और आप आ गए टैगोर पार्क में। आपका ट्रक वहीं पहुँचा होगा। वह कॉलोनी शहर के पश्चिमी छोर पर है। जल्दी जाइए, आपका तो जून में भी अप्रैल फूल बन गया।" हम वहाँ से ऑटो करके टैगोर नगर की ओर चल निकले। उस घटना को सुनाकर हम आज भी अपने परिचितों का मनोरंजन करते हैं। काश! हमने माँ की बात मानकर मोबाइल लिया होता।

प्रश्न 2.

Read the passage given below carefully and answer in Hindi the questions that follow, using your own words:

निम्नलिखित अवतरण को पढ़कर, अन्त में दिए गए प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखिए:-

ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर महात्मा बुद्ध ने अपना उपदेश सारनाथ में दिया। उसमें उन्होंने कहा- "जीवन के दो मार्ग हैं। एक मार्ग पर चलकर लोग सुख-साधनों को जुटाते हैं और भोगों से लिपटे रहते हैं। यह जीवन को सुखी नहीं बनाता। दूसरा मार्ग त्याग का है, तपस्या का है। इस पर चलकर लोग शरीर को कठोर यातनाएँ देकर भी अपने-आपको सुखी नहीं बना पाते। अतः ज्ञान-प्राप्ति के लिए, मानसिक सुख-शांति के लिए बीच . का मार्ग ही श्रेयस्कर है। बुद्ध का यही सिद्धांत मध्मय-मार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि महात्मा बुद्ध

जहाँ बोदिवृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न बैठे थे, उस मार्ग से एक भजन-मण्डली जा रही था। गीत की स्वर-लहरी वातावरण को गुंजित कर रही थी। सहसा समाधिस्त बुद्ध के कानों में गायिका के गीत के मधुर स्वर गूंज उठे'वीणा के तारों को ढीला न छोड़ो, नहीं तो उससे मधुर स्वर नहीं निकलेगा और न ही उन्हें इतना कसो कि वे टूट ही जायें।' इन शब्दों से बुद्ध को मध्यम मार्ग की प्रेरणा मिली। उन्होंने अनुभव किया कि न तो भोगों से पूर्णतया तृप्ति हो सकती है और न ही भोगों को पूर्ण रूप से त्यागा जा सकता है। अतः जीवन के लिए भोग और त्याग के बीच का मार्ग ही श्रेयस्कर है।

महात्मा बुद्ध का चिंतन सरल और स्वाभाविक था। उनके मत में ऊँच-नीच का भेदभाव न था। राजा से लेकर रंक तक उनके लिए समान थे। उन्होंने धर्म के बाह्य आडम्बरों की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि पर बल दिया। यज्ञ में दी जाने वाली पशु-बलि का उन्होंने विरोध किया। जन-साधारण की भाषा में उन्होंने अहिंसा और प्रेम का जो उपदेश दिया उसने जादू का काम किया

और देखते ही देखते लाखों नर-नारी उनके अनुयायी बन गये। 45 वर्षों तक उन्होंने घूम-घूम कर अपने अमृतमयी उपदेशों से जन-कल्याण किया।

महात्मा बुद्ध जीवन के 80 वर्ष पार कर चुके थे। शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। अन्त में उन्होंने कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया। कुशीनगर पहुँचते-पहुँचते उनका शरीर निढाल हो गया। उनके प्रिय शिष्य भिक्षु आनन्द ने शैय्या तैयार की। वह उस पर लेट गए। शिथिलता बढ़ती जा रही थी। निर्वाण की घड़ियाँ आ पहुँची थीं। यह देख आनन्द की आँखों से आँस फूट पड़े। बोले-"देव! अब हमारा मार्ग दर्शन कौन करेगा?" बुद्ध ने आँखें खोली। बोले- "आनन्द! तुम्हारे सामने विशाल कर्म-क्षेत्र है। जरा, रोग और मृत्यु से त्रस्त मानवता को अंहिसा और प्रेम का मार्ग दिखाओ। क्यों भूलते हो संसार नश्वर है? जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म प्रकृति का अटल नियम है। रही मार्ग-दर्शन की बात। कौन किसका मार्ग-दर्शन करता है? कौन किसका मार्ग-दर्शन कर सकता है? "अप्प दीपो भव- अपना दीपक आप बनो।" यह कहते हुए तथागत सदा के लिए समाधिस्थ हो गए। वातावरण शोक से भर गया। तथागत के निष्पंद पार्थिव शरीर के चारों ओर खड़े भिक्षु आँसू बहा रहे थे। रह-रह कर उनके कानों में तथागत के शब्द गूंज रहे थे। "भिक्षुओ! मुझ पर विश्वास मत करना। मैं जो कहता हूँ उस पर भी इसलिए विश्वास मत करना कि मैंने कहा है। सोचना, विचारना और अपने अनुभव की कसौटी पर जो खरा उतरे वही करना।"

प्रश्न

(i) मध्यम-मार्ग से आप क्या समझते हैं? महात्मा बुद्ध को मध्यम-मार्ग की प्रेरणा कैसे मिली? [4]

(ii) महात्मा बुद्ध के मत की क्या-क्या विशेषताएँ थीं कि देखते ही देखते लाखों नर-नारी उनके अनुयायी बन गए? [4]

(iii) महात्मा बुद्ध ने शोकाकुल भिक्षु को क्या उपदेश दिया? इससे हमें क्या शिक्षा मिलती है? [4]

(iv) महात्मा बुद्ध के निष्पंद पार्थिव शरीर के चारों ओर खड़े शोकाकुल भिक्षुओं के कानों में क्या शब्द गूंज रहे थे? इन शब्दों से क्या प्रेरणा मिलती है?

(v) 'अप्प दीपो भव' का क्या अर्थ है? ज्ञान-प्राप्ति के बाद महात्मा बुद्ध ने अपना उपदेश कहाँ दिया और उनका निर्वाण कहाँ हुआ?

उत्तर-

(i) मध्यम मार्ग का अर्थ है- 'बीच का रास्ता।' महात्मा बुद्ध जहाँ बोदिवृक्ष के नीचे ध्यान मग्न बैठे थे, उस मार्ग से एक भजन-मंडली जा रही थी। मंडली की गायिका जो गीत गा रही थी, उसका अर्थ था कि "वीणा के तार ढीले न छोड़ो, नहीं तो उससे मधुर स्वर नहीं निकलेगा और न ही इतना कसो कि वे टूट ही जाएँ।" बुद्ध को इसी से मध्यम मार्ग की प्रेरणा मिली।

(ii) महात्मा बुद्ध का चिंतन सरल व स्वाभाविक था। वे ऊँच-नीच का भेद मिटाकर समानता का सिद्धांत प्रचारित करते थे। उन्होंने धर्म के बाहरी आडम्बरों को छोड़ आंतरिक शुद्धि पर बल दिया। वे पशु-बलि का विरोध करते हुए अहिंसा और प्रेम का उपदेश देते थे। इससे लाखों नर-नारी उनके अनुयायी बन गए।

(iii) महात्मा बुद्ध ने भिक्षु आनंद से कहा-तुम्हारे सामने विशाल कर्मक्षेत्र है। जरा, रोग और मृत्यु से भयभीत मानवता को अहिंसा और प्रेम का मार्ग दिखाओ। संसार नश्वर है। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म प्रकृति का अटल नियम है। यहाँ कोई किसी का मार्गदर्शक नहीं बन सकता। 'अपना दीपक आप बनो।' इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मृत्यु और जन्म प्रकृति का अटल नियम है।

(iv) महात्मा बुद्ध के पार्थिव शरीर के चारों ओर खड़े शोकग्रस्त भिक्षुओं के कानों में ये शब्द गूंज रहे थे-"भिक्षुओ! मुझ पर विश्वास मत करना। मैं जो कहता हूँ उस पर भी इसलिए विश्वास मत करना कि मैंने कहा है। सोचना, विचारना और अपने अनुभव की कसौटी पर जो खरा उतरे वही करना। इन शब्दों से हमें प्रेरणा मिलती है कि उपदेशों को ज्ञान के आलोक में परख कर ही अपनाना चाहिए।

(v) 'अप्प दीपो भव' का अर्थ है कि अपना दीपक अर्थात्मार्ग दर्शक स्वयं बनो। महात्मा बुद्ध ने अपना उपदेश सारनाथ में दिया। उनका निर्वाण कुशीनगर में हुआ था।

प्रश्न 3.

(a) Correct the following sentences and rewrite:

निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध करके लिखिए

(i) मैंने आज जाना है।

(ii) पुलिस को देखकर चोर आठ तीन ग्यारह हो गए।

(iii) सूर्यास्त के छिपते ही वातावरण में अंधेरा छा गया।

(iv) साहित्य और समाज का घोर संबंध है।

(v) यह कार्य तत्काल अभी पूर्ण करना है।

(b) Use the following idioms in sentences of your own to illustrate their meaning:

निम्नलिखित मुहावरों का वाक्य में प्रयोग करें

(i) गले का हार होना

(ii) रंग चढ़ना। [5]
(iii) सिर उठाना।
(iv) चाँदी होना।
(v) अपने मुँह मियाँ मिठू बनना।

उत्तर-
(a)
(i) मुझे आज जाना है।
(ii) पुलिस को देखकर चोर नौ दो ग्यारह हो गए।
(iii) सूर्य के छिपते ही वातावरण में अँधेरा छा गया।
(iv) साहित्य और समाज का गहन संबंध है।
(v) यह कार्य तत्काल पूर्ण करना है।

(b)
(i) बच्चे अपने माता-पिता के गले का हार होते हैं।
(ii) देखते ही देखते पूरे निर्वाचन क्षेत्र में स्वामी जी का रंग चढ़ गया।
(iii) काश्मीर में अब भी आतंकवाद सिर उठा रहा है।
(iv) टमाटर के दामों में अभूतपूर्व तेज़ी से किसानों की चाँदी हो गई।
(v) आजकल के नेता अपने मुँह मियाँ मिठू बनते फिरते हैं।

Section-B
Prescribed Textbooks (50 Marks)
Answer four questions from this section on at least three of the prescribed textbooks.

गद्य संकलन-

प्रश्न 4.
एक जगह गरम-गरम जलेबियाँ बन रही थीं। बच्चों के लिए थोड़ी-सी खरीद लीं। घर के दरवाजे पर पहुँचे। दरवाजा खुला था। घर के अन्दर पैर रखने में हृदय धड़कता था। न जाने बच्चे किस हालत में हों?
(i) किसने और कब जलेबियाँ खरीदीं? जलेबियाँ खरीदने वाले का बच्चों से क्या सम्बन्ध था? [1]
(ii) जलेबियाँ खरीदने वाला व्यक्ति कहाँ और क्यों गया था? [3]
(iii) सीताराम जी की अनुपस्थिति में बच्चों की देखभाल किसे करनी पड़ती थी? इस बारे में

सीताराम जी क्यों चिंतित थे? [3]
(iv) इस बार बच्चों की देखभाल किसने और क्यों की? सीताराम जी का उससे कब और कैसे परिचय हुआ था? [5]

उत्तर-
(i) सीताराम ने देश के लिए एक वर्ष की जेल काटी थी। जेल से रिहा होते ही उन्होंने अपने बच्चों के लिए जलेबियाँ खरीदीं। उनकी पत्नी का देहांत हो चुका था और वे दो बच्चों के पालनपोषण के साथ-साथ स्वतंत्रता संग्राम में योगदान भी कर रहे थे।

(ii) सीताराम को देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के दोष में अंग्रेज़ सरकार द्वारा जेल भेज दिया गया था।

(iii) सीताराम जी की अनुपस्थिति में बच्चों की देखभाल कहारिन किया करती थी। वे इस बारे में चिंतित थे कि कहारिन के अपने भी तीन-चार बच्चे थे। उनके साथ दो और बच्चों को सँभालना कठिन कार्य था।

(iv) इस बार सीताराम के बच्चों की देखभाल गौरी ने की थी। सीताराम एक बार गौरी को अपने बच्चों की नई माँ के रूप में देखने गए थे। वह राधाकृष्ण जी की पुत्री थी। जब दोनों का संबंध सफल नहीं हो पाया तो सीताराम निराश नहीं हुए। परन्तु जब उन्हें एक साल का कारावास हो गया तो यह समाचार पढ़ते ही गौरी ने उनके बच्चों की माँ बनना स्वीकार कर लिया और उनके पास कानपुर चली गई।

प्रश्न 5.
"मजबूरी' कहानी मातृत्व प्रेम से परिपूर्ण एक सरल वृद्धा की कहानी है।" इस कथन की पुष्टि कहानी की घटनाओं के आधार पर कीजिए। [12 1/2]

उत्तर-
'मजबूरी' शीर्षक कहानी में लेखिका मन्नू भंडारी ने मातृत्व प्रेम से परिपूर्ण एक सरल वृद्धा 'अम्मा' का करुण व ममतामयी चित्रांकन किया है। गाँव में रहने वाली ममतामयी, 'अम्मा' को पुत्र रामेश्वर को कलेजे से दूर करना पड़ता है। यह उनकी पहली मजबूरी है। रामेश्वर के बिना उन्हें घर मसान जैसा लगता है। पहाड़ जैसा दिन उन्हें अकेले काटना पड़ता है। लेकिन अकेलेपन की यातना से दुखी अम्मा के अकेले जीवन में रामेश्वर के बड़े बेटे बेटू के आ जाने से बहार आ

जाती है। दूसरा पहलू यह है कि बहू रमा के कड़े नियंत्रण के बाद दादी अम्मा के असीम दुलार में पलता हुआ बेटू एकदम अनुशासनहीन हो जाता है। रमा की मजबूरी थी कि वह अगली संतान को ध्यान में रखकर अपने बेटू को अम्मा के पास छोड़ती है। वर्ष बाद लौटने पर उसे दुख होता है क्योंकि बेटू उदंड और अनुशासनहीन हो चुका है। वह उसे ले जाना चाहती है परंतु ले जा नहीं पाती।

इसके तीन वर्ष बाद रमा और रामेश्वर तीन साल के पप्पू को लेकर आए। पप्पू ने अंग्रेज़ी की छोटी-छोटी कविताएँ याद कर रखी थीं। दो महीने पूर्व ही उसे एक अंग्रेजी स्कूल में भर्ती करवाया गया था। रमा ने रामेश्वर से कहा कि जैसे भी हो इस बार बेटू को अपने साथ लेकर जाना होगा। रामेश्वर ने जवाब दिया कि "इस बात से अम्मा को बहुत दुख होगा तथा दूसरी समस्या यह है कि बेटू तुम्हारे पास ज़रा भी नहीं आता। वह अम्मा को छोड़कर वहाँ कैसे रहेगा?"

रामेश्वर बेचारा धर्म संकट में था। उसने सारी बात रमा पर छोड़ दी। अम्मा ने जब रमा का प्रस्ताव सुना कि वह बेटू को अपने साथ ले जाना चाहती है, तो उसके पैरों तले की जमीन सरक गई। बोली, "मेरे बिना वह एक पल भी तो नहीं रहता ...... एकाएक मुझसे दूर कैसे रहेगा?" रमा ने बेटू की पढ़ाई की बात की और कहा, "......"उसके साथ दुश्मनी ही निभानी है, तो रखिए इसे अपने पास।"

अम्मा यह बात सुनकर फूट-फूट कर रोने लगी। कुछ देर बाद स्वर को संयत करके बोली, "ले जा बहू, ले जा।"

दो दिन बाद रमा औषधालय के एकमात्र नौकर और दोनों बच्चों को लेकर अपनी माँ के यहाँ चल पड़ी। रमा ने बेटू को बताया ही नहीं कि वह उसे अपने साथ ले जा रही है।

उसके बाद घर में जो कोई भी आता उसे बेटू के चले जाने पर आश्चर्य होता। अम्मा ने उन्हें बताया कि गठिया के मारे उठना बैठना तक हराम हो रहा है, इसीलिए मैंने ही कह दिया कि पप्पू अब बड़ा हो गया है, सो बेटू को ले जाओ।

शाम को गुब्बारेवाला आया, बुढ़िया के बालवाला आया, मिठाई के खिलौने बेचने वाला आया, तो अम्मा ने सबको जवाब दिया- "जाओ भाई, जाओ ! आज तुम्हारा ग्राहक नहीं है। उसे मैंने उसकी अम्मा के साथ भेज दिया। अब यहाँ मत आया करो।"

तीसरे दिन औषधालय का नौकर वापस आया, तो उसने बताया कि दादी अम्मा को याद करते-करते बेटू को बुखार आ गया। रमा के हाथ से न कुछ खाता है न दवाई पीता है। अम्मा पागलों की भाँति दौड़ती हुई औषधालय पहुँची।

अम्मा बेटू को लेने चली गई और तीसरे दिन ही बेटू को लेकर लौट आईं। एक साल उन्होंने इसी प्रकार निकाल दिया। रमा मुंबई से आई तो बेटू का वही रवैया देखा। वह एक बार फिर दादी माँ को रुलाकर उनके मना करने पर भी बेटू को लेकर मुंबई के लिए चल पड़ी। अम्मा ने शिब्बू को साथ कर दिया।

शिब्बू मुंबई से लौटकर अम्मा को बताता है कि बेटू अब रमा के साथ हिल-मिल गया है और उसकी वहाँ लड़कों से दोस्ती हो गई है। इस पर अम्मा परसाद बाँटने के लिए सवा रुपया निकालती है। लेखिका ने यहाँ पर उसकी करुण स्थिति और रोती आँखों की मजबूरी उजागर की है। वह प्रसाद भले ही बाँट रही थी परंतु अकेले, सुनसान व शुष्क जीवन की मजबूरी उसे रुला रही थी।

प्रश्न 6.

संस्कृति की परिभाषा न देकर लेखक ने किन लक्षणों का उल्लेख कर संस्कृति को समझाने का प्रयत्न किया है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। [12]

उत्तर-

'संस्कृति क्या है?' शीर्षक निबंध में हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि, लेखक एवं सांस्कृतिक विचारक रामधारी सिंह 'दिनकर' ने संस्कृति के वास्तविक स्वरूप व लक्षणों को रेखांकित किया है।

दिनकर ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सकारात्मक प्रवृत्ति के उदाहरणों द्वारा इसके लक्षणों को संकेतित किया है। वे सबसे बड़ा उदाहरण मुस्लिमों के भारत में आगमन का देते हैं जिससे हमें कलाओं और भाषा (उर्दू) की समृद्धि प्राप्त हुई। चित्रकला भी इसी मुस्लिम शासन की देन है।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सकारात्मक व अनुकूल रूप सदैव हितकर होता है। यदि यूरोप से भारत का संपर्क न हुआ होता तो भारतीय विचारधारा पर विज्ञान की कृपा बहुत देर से हुई होती। इसी से जुड़ी बात यह है कि इसी यूरोपीय प्रभाव के कारण हमारे यहाँ राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और महात्मा गाँधी जैसे सुधारक व सांस्कृतिक चिंतक पैदा हुए हैं। जब दो जातियाँ मिलती हैं तो उनके संपर्क अथवा

संघर्ष से जीवन की एक नवीन धारा फूटती है, जिसका प्रभाव उन दोनों जातियों पर पड़ता है। अतः सांस्कृतिक लेन-देन की यह प्रक्रिया ही संस्कृति की आत्मा है। इसी के सहारे उसके प्राण बने रहते हैं और वह देर तक और दूर तक जीवित रहते हुए अपना प्रभाव डालती रहती है।

निबंधकार बताते हैं कि केवल चित्रकला, काव्य, मूर्ति कला, स्थापत्य या वास्तु कला और वस्त्र शैली पर नहीं, सांस्कृतिक संपर्क का प्रभाव दार्शनिक चिंतन और विचार की दशा-दिशा पर भी पड़ता है। वे लिखते हैं – केवल चित्र, कविता, मूर्ति, मकान और पोशाक पर ही नहीं, सांस्कृतिक संपर्क का प्रभाव दर्शन और विचार पर भी पड़ता है। एक देश में जो दार्शनिक और महात्मा उत्पन्न होते हैं, उनकी आवाज दसरे देशों में भी मिलते-जलते दार्शनिकों और महात्माओं को जन्म देती है। एक देश में जो धर्म खड़ा होता है, वह दूसरे देशों के धर्मों को भी बहुत-कुछ बदल देता है। यही नहीं, बल्कि प्राचीन जगत् में तो बहुत-से ऐसे देवी-देवता भी मिलते हैं जो कई जातियों के संस्कारों से निकलकर एक जगह जमा हुए हैं।

दिनकर जी का मानना है कि एक जाति विशेष की धार्मिक परिपाटी संपर्क में आने वाली किसी दूसरी जाति की परिपाटी या रिवाज बन जाता है। इसी प्रकार किसी एक देश की प्रवृत्तियाँ किसी दूसरे देश के सामाजिकों की प्रवृत्तियों में जाकर समा जाती हैं। अतः संस्कृति की दृष्टि से वह जाति और देश शक्ति संपन्न और महान समझे जाने चाहिए जिसने विश्व के अधिकांश जन-समूह को प्रभावित किया। उनके शब्दों में –

एक जाति का धार्मिक रिवाज दूसरी जाति का रिवाज बन जाता है और एक देश की आदत दूसरे देश के लोगों की आदत में समा जाती है। अतएव, सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशालिनी और महान् समझी जानी चाहिए जिसने विश्व के अधिक-से-अधिक देशों, अधिक-सेअधिक जातियों की संस्कृतियों को अपने भीतर जज़्ब करके, उन्हें पचा करके, बड़े-से-बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है।

निबंधकार ने सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति को सबसे बड़ी समन्वयकारी संस्कृति बताया है। इसका एकमात्र और महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि यहाँ की संस्कृति में बाहर की अधिकाधिक संस्कृतियाँ मिश्रित होकर उसका अभिन्न व अटूट अंग बन गई हैं।

काव्य मंजरी

प्रश्न 7.

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे
कौने देव बराइ बिरद हित, हठि-हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप जड़, जवन-कवन सुत तारे।
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया-बिबस विचारे। तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपौ हारै।

(i) प्रस्तुत पंक्तियाँ कहाँ से ली गई हैं? इनके कवि कौन हैं? भक्त ने किसके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है? [17]

(ii) पतितपावन किसे कहा गया है और क्यों? [3]

(iii) 'माया-बिबस बिचारे' पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए।

(iv) "जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे" शीर्षक पद के आधार पर कवि की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-

(i) प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य पुस्तक काव्य मंजरी में संकलित तुलसीदास के पद' शीर्षक कविता में से उद्धृत हैं। इसमें कवि तुलसीदास ने एक भक्त के रूप में भगवान श्रीराम के प्रति अपनी अटूट आस्था प्रकट की है। वे उनके श्री-चरणों को अपना परम धाम मानते हुए उसे छोड़कर कहीं भी दूसरी जगह न जाने का संकल्प व्यक्त कर रहे हैं।

(ii) पतितपावन प्रभु श्रीराम को कहा गया है। इस विशेषण की सार्थकता यह है कि वे एकमात्र ऐसे देव हैं जो नीच, अपवित्र, अधम या पतित व्यक्तियों का उद्धार करते हैं। उन्होंने न जाने कितने नरनारियों को मुक्ति प्रदान कर अपने चरणों में स्थान दिया है। जटायु, मरीच, जरा नामक शिकारी, अहल्या, यमलार्जुन वृक्ष आदि इसी के उदाहरण हैं।

(iii) 'माया-बिबस विचारे' का भाव यह है कि यह संसार एक दिखावटी चकाचौंध है। इसकी माया में ग्रस्त होकर जीव भ्रम में जीवन काटता जाता है। माया-मोह के वश में पड़ा प्राणी प्रभु को भूल जाता है और मुक्ति के लिए सार्थक प्रयास नहीं करता।

(iv) प्रस्तुत पद में कवि तुलसीदास ने अपने आराध्य देव प्रभु श्रीराम के चरणों को अपने जीवन का चरम लक्ष्य माना है। वे उनकी कृपा, वत्सल भावना, उद्धार करने की सामर्थ्य व भक्तों पर अपार करुणा से प्रभावित हैं। उन्हें लगता है कि प्रभु श्रीराम ही उन जैसे संसारी जीवों का उद्धार कर उन्हें अपने चरणों में जगह दे सकते हैं। वे इसकी पुष्टि के लिए रामायण व अन्य ग्रंथों से उदाहरण देते हैं जिनमें नीच, पतित व अधम नर-नारियों का उद्धार किया गया है। इसीलिए तुलसीदास को राम का परमभक्त कहते हैं।

प्रश्न 8.

साखी के आधार पर सिद्ध कीजिए कि कबीरदास जी एक सफल कवि एवं श्रेष्ठ उपदेशक थे, उन्होंने बाहरी आडम्बरों या पाखंडों का विरोध करके किस चीज़ पर अधिक ध्यान देने पर जोर दिया है? [12]

उत्तर-

भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के संत कवि कबीरदास एक क्रांतिकारी ज्ञानमार्गी कवि हैं। उन्होंने मध्यकालीन धर्म-साधना में अद्भुत व मौलिक योगदान दिया। उन्होंने अपने समय में प्रचलित धार्मिक संकीर्णताओं, पाखंडों, आडम्बरों व व्यर्थ कर्मकांडों की खुलकर निंदा की। कबीरदास ने अपनी क्रांतिकारी वाणी द्वारा मनुष्य को सच्चा मार्ग दिखाते हुए भक्ति के वास्तविक रूप का साक्षात्कार कराया। प्रस्तुत साखियों में कबीर का धर्म सुधारक तथा समाज सुधारक रूप दिखाई देता है। वे कहते हैं कि मनुष्य को सच्चे गुरु द्वारा दिया गया ज्ञानदान ही इस जगत् से मुक्ति दिला सकता है। लोक-प्रचलित विश्वासों और वैदिक सूत्रों की अपेक्षा सद्गुरु की शरण में जाना अनुकूल सिद्ध हुआ। उसके दिए हुए ज्ञान के प्रकाश से सारा अंधकार मिट जाता है। जब तक मनुष्य प्रेम के महत्त्व को नहीं समझता, तब तक उसकी आत्मा तृप्त नहीं हो सकती और वह शुष्कता का जीवन ही जीता रहता है।

कबीर ने स्पष्ट किया है कि आत्मा उस परमात्मा का अंश है जो अलख, निराकार अजर-अमर, स्वयंभू तथा एक है। उससे बिछुड़ी आत्मा उसी ब्रहम् में लीन होने के लिए व्याकुल रहती है। उसे जब तक प्रभु से मिलन नहीं हो जाता, तब तक दिन-रात, धूप-छाँव और स्वप्न में भी कहीं सुख प्राप्त नहीं हो सकता। वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें जीते जी दर्शन हो जाएँ तो अच्छा है क्योंकि मरने के बाद दर्शन किसी काम के नहीं।

कबीर की प्रभु से बिछुड़ी आत्मा उसी का नाम पुकारती रहती है और उसका मार्ग निहारती रहती है। अब आँखें थक चुकी हैं जो प्रभु के आने के मार्ग पर सदैव से टिकी हुई थीं। जीभ पर भी उसका नाम रटते-रटते छाला पड़ चुका है।

कबीर ने प्रभु से सच्ची लौ लगाने का प्रस्ताव किया है। उनका विचार है कि योगी का पाखंड धारण करके जंगल-जंगल या पर्वत-पर्वत भ्रमण करने पर कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका। प्रभु से मिलाने वाली बूटी अर्थात् साधना का सूत्र कहीं पर भी नहीं मिला। क्योंकि यह भक्ति का सच्चा मार्ग नहीं था। संसार में आकर मनुष्य अनुपम चकाचौंध में भ्रमित होने लगता है। उसे मोह-माया आकर्षित कर लेती है। जब तक इस मोह-बंधन से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक प्रभु दूर ही रहता है।

कबीर ने ईश्वर को प्राप्त करने के लिए शारीरिक रूप से योगी बनने के प्रचलन को भ्रामक व अर्थहीन बताया है। वे कहते हैं कि जब तक मनुष्य अपनी अंतरात्मा से योगी नहीं बनता, तब तक उसे कभी भी मुक्ति रूपी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। उनका आशय है कि बाहरी रूप से योगी या संत का पहनावा कुछ नहीं कर सकता। साधक को अपने भीतर के विकारों और अपनी भोगपरक इंद्रियों पर काबू पाना होगा। ऐसा मन का योगी कोई विरला ही होता है और वही मुक्ति रूपी सिद्धि का सच्चा तथा वास्तविक अधिकारी होता है।

कबीर ने जहाँ एक ओर इंद्रियों को वश में रखने और मन की शुद्धि पर बल दिया है। वहीं उन्होंने आचरण की स्वच्छता को भी अनिवार्य बताया है। सच्चा आचरण तभी अपनाया जा सकता है जब मनुष्य का अपने अहं पर पूर्ण नियंत्रण हो। जब तक उसमें अहं-भावना का प्रसार रहता है, तब तक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इस ज्ञान के बिना हरि से मिलन संभव नहीं। वे कहते हैं कि अहंकार और ईश्वर एक ही शरीर के भीतर निवास नहीं कर सकते।

इस प्रकार कबीर ने ज्ञानमार्ग द्वारा तत्कालीन धार्मिक समाज को सही दिशा दिखाई है। वे वास्तव में एक क्रांतिकारी सुधारक थे।

प्रश्न 9.
'जैसा हम बोयेंगे वैसा ही पायेंगे'। पंक्ति को आधार बनाकर 'आः धरती कितना देती है' कविता की समीक्षा कीजिए। [12]

उत्तर-

कवि सुमित्रानंदन पंत ने प्रस्तुत कविता में इस सूक्ति को प्रमाणित किया है कि समाज में रहने वाला प्राणी जैसा बोएगा, वैसा ही काटेगा। अर्थात् हम अपने कर्मों का फल अवश्य पाते हैं। कवि ने अपने बचपन के एक हास्यास्पद विचार को आधार बनाकर एक महान् सत्य की ओर संकेत दिया है।

कवि पंत ने बचपन में पैसों के बीज बोकर यह आशा की थी कि पैसों के पेड़ उगेंगे और उन पैसों को पाकर वह धनी सेठ बन जाएगा। परंतु ऐसा न हो सका।

इस घटना के पचास वर्ष बाद कवि अपने आँगन की गीली मिट्टी में सेम के बीज बोता है। कवि को यह देखकर आश्चर्य होता है कि समय पाकर उन बीजों पर अंकुर निकल आते हैं जो छतरियों की तरह दिखाई देते हैं।

समय पाकर सेम की लता फैल जाती है। उन लताओं पर बहुत-सी फलियाँ लगती हैं। कवि सोचता है कि धरती हमें कितना कुछ देती है। धरती हमारी माता है जो अपने पुत्रों को बहुत कुछ देती है। उसे बालपन में यह भेद समझ नहीं आया था। इसीलिए लालच में आकर उसके गर्भ में पैसों के बीज बो दिए थे।

कवि समझाना चाहता है कि प्रकृति का अपना नियम है। धरती में हम जो कुछ बोते हैं, वैसा ही काटेंगे। परंतु पैसे बोने से वह पैसों के पेड़ नहीं उगाती क्योंकि ऐसा करना लालच व स्वार्थ का सूचक है। जब हम उसके गर्भ में अनुकूल व प्रकृति के नियम के अनुसार बीज बोते हैं तो वह हमें कितना कुछ देती है। इस प्रकार वह रत्न पैदा करने वाली सिद्ध होती है। कवि के शब्दों में-

'रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ।'

कवि की मूल दृष्टि मानवतावादी है। वह अपने समाज में फैले वर्ग-भेद से व्यथित है। उसे इस बात का दुःख है कि हम अपने समाज का घृणित स्तरीकरण कर रहे हैं। इस प्रकार अपने ही जैसे मनुष्यों से घृणा करने लगते हैं। हमें धरती से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। वह हमें कितना कुछ देती है और बदले में हमसे कुछ भी उम्मीद नहीं रखती।

पंत का विचार है कि हमें धरती में सच्ची समता के दाने बोने हैं ताकि विषमता और असमानता के अभिशाप से मुक्ति मिले। कवि के शब्दों में

'इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं।'

पंत को मानव की क्षमता पर अटूट विश्वास है। वह चाहता है कि प्रत्येक मानव अपनी इस अद्भुत क्षमता का उपयोग जन-कल्याण के लिए करे। उसका विचार है-"इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं।" आज मनुष्य ममताहीन या निर्मम होता जा रहा है। अतः हमें चाहिए कि मानव की ममता के दाने बोए जाएँ ताकि उससे सुनहली फ़सलें उग सकें। ये फ़सलें मानवता की होंगी। कवि के अनुसार

"मानवता की जीवन श्रम से हँसें दिशाएँ,
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पाएँगे।"

ये कुल मिलाकर कवि ने प्रकृति-चित्रण के बहाने मानवता का संदेश दिया है जिसमें स्वार्थहीन परोपकार, समता, क्षमता और ममता का व्यवहार अपनाया जाए। तभी हमारा समाज वर्गहीन घृणाहीन और सक्षम बन पाएगा क्योंकि हम जैसा समाज रूपी धरती में बीज बोएँगे, वैसा ही फल प्राप्त करेंगे।

सारा आकाश

प्रश्न 10.
"बाबू जी तुम मुझे अपने हाथ से जहर देकर मार डालो
मेरा गला घोट दो .... मुझे वहाँ मत भेजो ....॥"

(i) इस कथन का वक्ता कौन है.? उसका परिचय दीजिए।
(ii) उसे कहाँ भेजा गया और क्यों? समझाकर लिखिए।
(iii) बेटी की दुर्दशा देखकर माता-पिता की क्या स्थिति थी? [3]
(iv) उपन्यास के आधार पर तत्कालीन नारी की दशा का वर्णन कीजिए। [5]

उत्तर-
(i) प्रस्तुत गद्यांश राजेंद्र यादव कृत उपन्यास 'सारा आकाश' में से उद्धृत है। इस संवाद की वक्ता मुन्नी नामक स्त्री है। वह उपन्यास के नायक समर की बहन है जिसका वैवाहिक जीवन अत्यंत करुण, विपन्न, उत्पीड़क तथा घातक सिद्ध होता है। परिणाम स्वरूप उसे प्रताड़ना का बोझ न सहते हुए आत्महत्या करनी पड़ती है।

(ii) मुन्नी को अपने सुसराल में पति का उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता था। जब वह तंग आकर मायके आ गई तो उसका पति उसे पुनः मनाने आ गया। वह वस्तु स्थिति जानती थी जिसके कारण पुनः सुसराल नहीं जाना चाहती थी। उसे पता था कि सास के देहांत के बाद अब सुसराल में उसका पक्ष लेने वाला कोई न था।

(iii) मुन्नी की दुर्दशा दहेज उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा का जीवंत उदाहरण है। अपनी बेटी की दुर्दशा देखकर माता-पिता का दिल दहल जाता था। परन्तु सामाजिक रीति को निभाते हुए उन्होंने उसे दूसरी बार उसके नारकीय ससुराल में भेजने का निर्णय ले लिया।

(iv) प्रस्तुत उपन्यास एक यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें मुख्यतः नारी पर होने वाले अनुदार अत्याचारों का चित्रांकन हुआ है। समर की पत्नी प्रभा और बहन मुन्नी नामक दो नारियों का जीवन तत्कालीन समाज की भेदभाव भरी दृष्टि तथा उत्पीड़क व्यवहार की ओर संकेत करता है। प्रभा को न केवल दहेज के लिए ताने सुनने पड़ते हैं बल्कि पति के दुर्व्यवहार (पूर्वार्द्ध भाग में) का भी सामना करना पड़ता है। उसकी सास व भाभी उत्पीड़क पात्रों के रूप में स्थित हैं। दूसरी ओर मुन्नी का करुण और त्रासद जीवन तत्कालीन पुरुष की लम्पट तथा अमानवीय विचारधारा का प्रतीक है। यहाँ उपन्यासकार की दृष्टि नारी के प्रति संवेदना प्रकट करती दिखाई देती है।

प्रश्न 11.

समर का मन आत्म-ग्लानि से कब भर गया और क्यों? समझाकर लिखिए। [12 1/2]

उत्तर-

समर प्रसिद्ध उपन्यासकार राजेंद्र यादव कृत यर्थाथवादी उपन्यास 'सारा आकाश' का नायक है। उपन्यासकार ने उसका चरित्र दो भागों में चित्रित किया है। उपन्यास के प्रथम आधे चरण में समर एक दम्भी पुरुषप्रधान व नारी उत्पीड़क दृष्टि का प्रतीक बनकर आता है। उपन्यास के दूसरे चरण में उसकी दृष्टि सहिष्णु अनुशासित, तर्कशील, पत्नी-प्रेमी और न्यायसंगत व्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करती है। समर एक संवेदनशील युवक है। वह पत्नी के प्रति होने वाले संयुक्त परिवार के दुर्व्यवहार व घरेलू हिंसा को निष्पक्ष होकर सोचता है, तो एकदम बदल जाता है। प्रभा की सहनशीलता उसे आत्म-ग्लानि से भर देती है। उसका व्यवहार बदलने लगता है और वह पत्नी के प्रति एकदम करुण तथा प्रेमिल हो उठता है।

समर और प्रभा के बीच सुहागरात से ही मन-मुटाव चल रहा था जो लम्बा खिंचता चला गया। विवाह के बहुत दिन बाद एक दिन आधी रात के समय छत पर अपनी पत्नी को रोता-सिसकता

देख नायक समर का मन करुणाद्रवित हो उठता है और वह अपने निष्ठुर व्यवहार पर लज्जित हो, प्रभा से क्षमा माँगता है और दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति प्रेम तथा अपनाव की सरिता बहने लगती है।

प्रभा व समर दोनों रात-भर रो-रोकर अपने हृदय को हल्का करते रहे, एक-दूसरे के प्रति पूर्णतः आत्म समर्पित हो एक नया जीवन बिताने की सौगंध खाते रहे। उस मिलन ने दोनों के बीच अहं की दीवार को तोड़ दिया। प्रात:काल होते ही प्रभा तो घर का काम काज करने के लिए रसोई-घर में चली गई और समर को एक नयी अनुभूति हुई, उसे सब कुछ उल्लासमय और प्रफुल्लित दिखने लगा।

वास्तव में समर और प्रभा के बीच मन-मुटाव का मुख्य कारण असमय विवाह था। छात्रावस्था में विवाह हो जाने पर समर समस्याओं से घिर जाता है। वह आर्थिक व मानसिक दृष्टि से माता-पिता पर आश्रित था। उसकी स्वतंत्र चिंतन-धारा उसे एक अहंवादी पति बना देती। इसी कारण उसका व्यवहार अपनी सुशील, सुंदर व सुशिक्षिता पत्नी के प्रति कठोर होता गया। वह उसकी हर उचित प्रक्रिया पर भी प्रश्न चिह्न लगाने लगा था। परन्तु इस घटना ने उसे भीतर तथा बाहर से बदल दिया।

प्रश्न 12.

'सारा आकाश' उपन्यास के आधार पर नायिका प्रभा का चरित्र-चित्रण कीजिए। [12]

उत्तर-

प्रभा उपन्यासकार राजेंद्र यादव कृत यथार्थवादी उपन्यास 'सारा आकाश' की नायिका है। उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं

1. शिक्षित, सुसंस्कृत एवं सुशील- उपन्यासकार ने प्रभा को एक शिक्षिता युवती के रूप में दिखाया है। जिस काल का यह उपन्यास है, उस काल में प्रभा का मैट्रिक पास होना अत्यंत महत्त्व रखता है। उस समय इतनी पढ़ी-लिखी लड़की मिलना कठिन था क्योंकि प्रायः मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय लोग अपनी कन्याओं को शिक्षा देने के विरोधी होते थे। उस समय इतनी शिक्षिता युवती सुगमता से कहीं भी नौकरी पा सकती थी।

मैट्रिक पास होने पर भी प्रभा सुसंस्कृत तथा सुशील है। उसके मन-मस्तिष्क में इस बात का कोई भी घमंड नहीं है। वह सबसे विनम्रता से पेश आती है।

2. स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान- प्रभा में स्वाभिमान तथा आत्मसम्मान की भावना भरपूर है। सुहागरात से ही उसका ऐसा ही चरित्र उजागर होता है। जब वह मायके चली जाती है तो तब तक वापस नहीं आती जब तक ससुराल से समर उसे लेने नहीं जाता। छह महीने के बाद ससुराल लौटने पर भी उसमें अनावश्यक छोटापन दिखाई नहीं देता। जब भाभी उसे समर के कमरे में जाकर सोने को कहती है तो वह स्वाभिमान और आत्मसम्मान का परिचय देते हुए इस प्रकार कहती है

“जबरदस्ती वही कहीं जाकर सो जाऊँ? मुझसे तो नहीं होता जिठानीजी कि कोई दुत्कारता रहे और पूँछ हिलाते रहो, ठोकर मारता रहे और तलुए चाटते रहो। उनके बोर्ड के इम्तहान हैं, मैं क्यों तंग करूँ? कुछ हो गया तो बाद में सब मेरा ही नाम लेंगे। हमारा यहाँ आना तो जम दिखाई दिया और तुम कहती हो कि वहीं चली जा।”

3. कार्यकुशल- प्रभा एक कार्यकुशल स्त्री है। उसका जेठ धीरज भी उसकी प्रशंसा में कहता है कि वह बहुत स्वादिष्ट रसोई पकाती है। भले ही भाभी (जेठानी) उससे ईर्ष्या करते हुए उसकी दाल में अतिरिक्त नमक डाल कर उसे डाँट पिलवा देती है परंतु वह हारती नहीं। उसे अपनी कार्यकुशलता पर भरोसा था। यही कारण है कि उसके बाद वह काम से कभी भी पराजित नहीं हुई।

समर की उपेक्षा के बावजूद प्रभा संयुक्त परिवार की पूरी-पूरी व्यवस्था संभाल लेती है। वह घर के रख-रखाव पर पूरा ध्यान देती है। उसे प्रातः से लेकर रात ग्यारह साढ़े ग्यारह तक काम करना पड़ता है। इससे प्रभावित समर सोचता है

“वह सब कुछ ऐसी आसानी और चुपचाप करती चली जाती है, मानो मशीन हो और उसे यह सब करने में कोई कष्ट न होता हो। हर-नए काम को ऐसी स्वाभाविकता से ग्रहण करती चली जाती कि लगता ही नहीं था कि उसे करने में कहीं भी अनिच्छा का लेश या थकान है और मैं इसी पर खीझ उठता। उसके व्यवहार में कहीं अनिच्छा या थकान दीखे तो मैं अपने को उसके कष्ट से आनन्दित कर सकूँ, मन में कहूँ कि “कहो बच्ची जी, अब कैसा लग रहा है?”।

4. सहिष्णु- प्रभा इतनी सहिष्णु है कि अपने ऊपर किया गया हर प्रकार का दुर्व्यवहार चुपके से सह जाती है। उसमें सहनशीलता की चरम सीमा दिखाई देती है। उसे कभी किसी से ऊँचा बोलते नहीं सुना। न ही वह किसी अनावश्यक वाद-विवाद में पड़ती है। दाल में नमक का प्रसंग,

नामकरण के उत्सव पर गणेश की मूर्ति की घटना आदि उसे तनिक भी विचलित नहीं करतीं। वह सब प्रकार का गाली-गलौच और पति का तमाचा तक सह जाती है।

प्रभा की सहिष्णुता का प्रमाण यह है कि विपरीत व्यवहार पर तुला हुआ समर भी पिघल जाता है। वह उसकी सहनशीलता से प्रभावित होकर इस प्रकार सोचता है

“जब भी इस बात का ध्यान आता कि एक निरीह बेकसूर किसी की लाड़ प्यार से पाली गई इकलौती लड़की को लाकर मैंने क्या-क्या अत्याचार नहीं किए, कौन-कौन से कहर उस पर नहीं तोड़े, उसे कितनी-कितनी यातनाएँ नहीं दी, और उसका यहाँ था ही कौन जिससे अपना दुखड़ा रोती, तो हज़ारों बरछे-जैसे एक साथ ही छाती में आ लगते और रुलाई दुगनी चौगुनी होकर उमड़ने लगती। उस बेचारी के पास धीरे-धीरे घुटने के सिवा चारा ही क्या था? उस क्षण तो ऐसा लगा जैसे आँसू, सिसकी, तड़प किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं है कि हृदय के इस पश्चात्ताप और मन की इस बैचेनी को, इस छटपटाहट और मर्मान्तक पीड़ा को बाहर निकालकर ला सके।”

अम्मा की डाँट, दहेज के ताने, निरर्थक लाँछन आदि भी उसकी सहनशीलता की शीतलता को कम नहीं कर पाते।

5. मर्यादा-भावना- उपन्यासकार ने प्रभा को एक मर्यादा में रहने वाली स्त्री के रूप में चित्रित किया है। उसमें उच्छृखलता, उदंडता या अशिष्टता का लेशमात्र भी अंश नहीं है। वह जानती है कि संयुक्त परिवारों में किस प्रकार की मर्यादा का पालन करना पड़ता है। यही कारण है कि वह न तो भाभी के कटु व्यंग्य सुनकर उत्तेजित होती है और न ही समर के प्रारंभिक व्यवहार पर। वह अम्मा के कठोर वाक्यों और दहेज के लोभ में सने शब्दों पर भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करती।

इस प्रकार लेखक ने उसे एक मर्यादित व्यवहार कुशल, सुसंस्कृत सहिष्णु परन्तु तर्कशील नारी के रूप में दिखाया है।

आषाढ़ का एक दिन

प्रश्न 13.

“यह लोकनीति है मैं तो कहूँगा कि लोकनीति और मूर्खनीति दोनों का एक ही अर्थ है।”

(i) उपर्युक्त कथन कौन, किससे और कब कह रहा है? [17]

(ii) उपर्युक्त वाक्य किस सन्दर्भ में कहा गया है?
(iii) वक्ता का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
(iv) 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का उद्देश्य लिखिए।

उत्तर-
(i) प्रस्तुत कथन सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश कृत ऐतिहासिक नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में से उद्धृत है। इसका वक्ता मातुल है। वह कालिदास का मामा है। यह कथन उसने तब कहा, जब वह अपनी बहन अंबिका से कालिदास के विचारों पर टिप्पणी कर रहा था।

(ii) प्रस्तुत वाक्य मातुल द्वारा कालिदास के उज्जयिनी न जाने के निर्णय के प्रसंग में कहा गया है। जब अंबिका बताती है कि कालिदास अपने स्वाभिमान के कारण राजकीय सम्मान नहीं ग्रहण करना चाहता क्योंकि यह क्रय-विक्रय की नीति है, तो मातुल उक्त टिप्पणी करता है। वह इसे लोक-नीति न कहकर मूर्खनीति घोषित करता है।

(iii) वक्ता मातुल कालिदास का मामा है। वह पशु पालने का व्यवसाय करता है। उसे साहित्य की कोई समझ नहीं है। वह चाहता है कि जैसे-वैसे कालिदास को पद और प्रतिष्ठा मिल जाए। वह एक व्यवहार-कुशल सामाजिक है जो अवसर का लाभ उठाना चाहता है। उसे यश की चाह है। वह एक चाटुकार और स्वार्थी चरित्र वाला व्यक्ति है। राज्याश्रय का कटु अनुभव उसे धरती पर लाकर खड़ा कर देता है।

(iv) 'आषाढ़ का एक दिन' नामक नाटक तीन समस्याओं को लेकर चलता है। राज्याश्रय, सर्जक का अहं तथा नर-नारी संबंध। पूरे नाटक में कालिदास को केंद्र में रखकर इन्हीं तीन समस्याओं को उद्देश्य के रूप में चित्रित किया गया है।

वास्तव में नाटककार ने कालिदास के अंह को नाटक की पहली समस्या के रूप में उभारा है। नाटक में दूसरी समस्या राज्याश्रय से जुड़ी है। नाटककार यह स्थापित करना चाहता है कि राजकीय मुद्राओं से खरीदा गया साहित्यकार कभी भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए नहीं रख सकता। राजदरबार में जाते ही उसकी प्रतिभा कुंद हो जाती है। कालिदास के संदर्भ में भी यही होता है। वह अपने स्वतंत्र जीवन-दर्शन और सर्जनात्मक चिंतन से हाथ धो बैठता है।

तीसरी समस्या नर-नारी संबंधों के रूप में आती है। मल्लिका और कालिदास का निश्छल और निश्चल पवित्र प्रेम एक ओर रह जाता है और राज्याश्रय का प्रकोप प्रबल हो उठता है। यद्यपि

राज्याश्रय में जाने की प्रेरणा स्वयं मल्लिका देती है तथापि उसके पीछे उसकी दुर्गति भी कम त्रासद नहीं है। माँ अंबिका के स्वर्गवास के बाद वह दाने-दाने को मुँहताज हो जाती है तो विवशता में विलोम का आश्रय स्वीकार कर लेती है। विलोम से उसकी एक बच्ची भी हो जाती है। परंतु उसके मन-मस्तिष्क पर कालिदास ही छाया रहता है। अंत में उसे अनिश्चितता के धरातल पर खड़ा देखते हैं।

राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से कालिदास का विवाह भी इसी ओर संकेत करता है कि कालिदास के लिए प्रेम अंतिम व चरम मूल्य नहीं बन सका। इस प्रकार नाटककार ने इन तीन समस्याओं के आलोक में प्रस्तुत नाटक का ताना-बाना बुना है।

प्रश्न 14.
मल्लिका 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की एक महत्त्वपूर्ण पात्र है, जिसके चरित्र ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए। [12]

उत्तर-
मल्लिका 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक की नायिका है। वह कालिदास की प्रेमिका है जो प्रेम प्रसंग के दुखांत को अकेले ही भोगती है। उसके चरित्र में प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं
1. स्वतंत्र चिंतन- मल्लिका के चरित्र में सबसे बड़ी विशेषता स्वतंत्र चिंतन की है। वह कालिदास से प्रेम करती है और अपनी माँ से स्वतंत्र रूप में अपने प्रेम-प्रसंग की पैरवी करती है। वह कहती है कि उसने कालिदास के रूप में एक भावना का वरण किया है और यह वरण उसकी स्वतंत्रता को पुष्ट करता है। वह लोक-लाज की तनिक भी परवाह नहीं करती। वह कहती है-
"क्या कहते हैं वे? क्या अधिकार है उन्हें कुछ कहने का? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है।" उसका विश्वास व्यक्तिगत स्वतंत्रता में है।

2. प्रेम-भावना- मल्लिका कालिदास की प्रेमिका है। उसका प्रेम अत्यंत उज्ज्वल है। उसमें स्वार्थ भावना का लेश मात्र भी अंश नहीं है। यही कारण है कि वह उसे उज्जयिनी चले जाने की प्रेरणा देती है। कोई स्वार्थी लड़की होती तो अपने जीवन-आधार को अपने से इस प्रकार अलग होने के लिए विवश न करती।

वह अपनी माँ से अपने पवित्र प्रेम की चर्चा करते हुए कहती है

“………. मैं जानती हूँ कि माँ की अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ, जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है……….।”

जब मल्लिका को पता चलता है कि कालिदास ने राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लिया है तो भी वह चिंतित व दुखी नहीं होती। वह तो कालिदास से पवित्र प्रेम करती है। वह शांत बनी रहती है, कहती है “……….. तो इसमें दोष क्या है? ………. वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही संसर्ग चाहिए था……….. इसके विपरीत मुझे अपने से ग्लानि होती है, यह कि, ऐसे मैं उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा भी बन सकती थी।”

3. स्वाभिमान- मल्लिका को नाटक में एक स्वाभिमानी युवती के रूप में दिखाया है। वह अंत तक आत्म-सम्मान को बनाए रखने का भरसक प्रयास करती है।

वह बीमार माँ के लिए विलोम द्वारा मधु भिजवाने की बात सुनकर उसे मना कर देती है, यह कह कर कि उसके घर पर्याप्त मात्रा में मधु है। वह प्रियंगुमंजरी द्वारा रखे गए घर के परिसंस्कार के प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है। कहती है “………… आप बहुत उदार हैं। परंतु हमें ऐसे घर में रहने का ही अभ्यास है, इसलिए हमें असुविधा नहीं होती।”

जब प्रियंगुमंजरी उसका विवाह करवाने का प्रस्ताव रखती है तो उसके अहम् को चोट लगती है। वह आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए कह उठती है कि “………… आप इस विषय में चर्चा न ही करें तो अच्छा होगा।” जाते-जाते प्रियंगुमंजरी उसे कुछ वस्त्र और स्वर्ण-मुद्राएँ भिजवाती हैं, जिन्हें मल्लिका आदरपूर्वक लौटा देती है।

4. ममता- नाटककार ने मल्लिका में ममता व करुणा के गुण दिखाए हैं। उसकी यह करुणा और ममता उस संदर्भ में देखी जाती है जब कालिदास घायल हिरण के बच्चे को लाकर मल्लिका से कहता है कि वह उसे वहाँ इसलिए लाया है कि वहाँ उसे माँ का-सा स्नेह मिलेगा

“मैंने कहा तुम्हें वहाँ ले चलता हूँ, जहाँ तुम्हें अपनी माँ की सी आँखें और उसका सा ही स्नेह मिलेगा ……….”

नाटक के अंत में भी उसका यही वात्सल्य का रूप दोबारा देखने को मिलता है। अपने तीव्र अंतर्वंद्व के क्षणों में भी वह अपनी बच्ची को नहीं भूलती, उसे बार-बार देखने, चुप कराने अंदर जाती है और अंत में कालिदास के पीछे भागती-भागती भी उसी बच्ची के कारण रुक जाती है और उसे अपनी छाती से चिपका लेती है।

5. कर्तव्य-बोध- मल्लिका में अपने कर्तव्य के प्रति चेतना पाई जाती है। कालिदास को उज्जयिनी जाने की प्रेरणा देते समय इसी कर्तव्य को निभाती है और कहती है-

"मैं जानती हूँ कि तुम्हारे चले जाने पर मेरे अंतर को एक रिक्तता छा लेगी, और बाहर भी संभवतः बहुत सूना प्रतीत होगा। फिर भी मैं अपने साथ छल नहीं कर रही। मैं हृदय से कहती हूँ तुम्हें जाना चाहिए .... यहाँ ग्राम प्रांतर में रह कर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवकाश कहाँ मिलेगा .... तुम्हें आज नई भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना सके ...." इस प्रकार वह अपने कर्तव्य-बोध के मार्ग में अंधे प्रेम को बाधा नहीं बनने देती। दूसरी ओर अभावग्रस्तता के प्रकोप में विलोम की शरण को स्वीकार कर लेती है और परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करती है।

इस प्रकार नाटककार ने मल्लिका के चरित्र को एक सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है जो अंत तक हार नहीं मानती।

प्रश्न 15.
मोहन राकेश द्वारा लिखित 'आषाढ़ का एक दिन' नाट्य लेखन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। नाटक के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए। [12 1/2]

उत्तर-
मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक हिंदी नाटक और रंगमंच के इतिहास में एक विलक्षण स्थान रखता है। वे पहले नाटककार हैं जिन्होंने नाटक और रंगमंच का परस्पर रिश्ता जोड़ा। उन्होंने रंगमंच के अनुसार नाट्य-लेखन को महत्त्व दिया। प्रस्तुत नाटक इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि देश के विभिन्न मंचों पर इसका सफल मंचन हुआ है।

मोहन राकेश के नाटकों को पढ़कर और उनका मंचन देखकर स्पष्ट हो जाता है कि वे कथातंत्र और नाट्य विधा दोनों पर समान अधिकार रखते हैं। दोनों विधाओं पर उनकी गहरी पकड़ है। वे

कहीं भी कथात्मकता के चक्कर में नाट्य विधा की पीछे नहीं छोड़ते। उन्होंने दोनों का समान निर्वाह किया है। वास्तव में मोहन राकेश को अपने संक्षिप्त जीवनकाल में जो ख्याति प्राप्त हुई, उसका कारण उनके नाटक ही थे- जिसके कारण वे एक युगान्तकारी नाटककार सिद्ध हुए। सम्भवतः ऐसा सौभाग्य अन्य नाटककारों को प्राप्त नहीं हो सका। इनके नाटकों से कथा साहित्य में एक नवीनता के दर्शन हुए और हिन्दी रंगमंच के विकास में भारी सहायता मिली।

मोहन राकेश के नाटकों को ख्याति इसलिए भी प्राप्त हुई कि वे अपने नाटकों के मंचन से सम्बन्धित सभी बातों का विवरण देते थे। यह बात उनकी डायरी के पन्नों से स्पष्ट होती है। इन बातों से रचना-धर्मिता के प्रति उनकी समर्पण भावना का पता चलता है।

प्रस्तुत नाटक मोहन राकेश का एक ऐसा नाटक है जिसमें इतिहास को आधार बनाकर समकालीन समस्याओं की ओर प्रबल व प्रभावपूर्ण ढंग से संकेत किया गया है। हिंदी नाट्य-लेखन के क्षेत्र में यह एक ऐतिहासिक कृति है। इसमें मूल रूप से कालिदास के जीवन को आधार में लेकर साहित्य-सृजन, सृजन की स्वतंत्रता, सर्जक के स्वाभिमान और राज्याश्रय की समस्या पर विचार किया गया है। नाटक की एक और बड़ी समस्या नर-नारी संबंधों अर्थात् प्रेम-भावना को लेकर चलती है।

प्रस्तुत नाटक का नामकरण छायावादी प्रतीत होता है। वास्तव में यह नाटक भावनाओं के वरण और राज्याश्रय के कारण कुंठित स्वाभिमान के बीच मंचित होता है। नाटककार ने नाटक के प्रारंभ में भी आषाढ़ के दिन बरसते मेघों की चर्चा की है और अंत भी इसी नैसर्गिक परिवेश में होता है। नाटककार ने इसी को संकेतित करने के लिए बरसते मेघों, कड़कती चमकती बिजली आदि की योजना को प्रस्तुत किया है।

वास्तव में नाटक के मूल में जिस भावनात्मक परिवेश की आवश्यकता थी, उसे प्राकृतिक संसर्ग द्वारा ही दिखाया जा सकता था। इसलिए आषाढ़ का बरसता दिन और उसमें भीगती हुई मल्लिका को दिखाना एक सार्थक तथा उपयुक्त प्रयास है। रोमांटिकता का बोध नाटक को एक सटीक आधार दे जाता है।

नाटककार मोहन राकेश ने दिखाया है कि आषाढ़ की पहली वर्षा मल्लिका के लिए- कुछ हद तक कालिदास के लिए भी, जिस आनन्द का सन्देश लेकर आई थी, वही और उसी प्रकार की वर्षा, बादलों की गरज और बिजली की चमक उन दोनों के हर्षोल्लास को सदा सदा के लिए छीनकर,

जीवन के यथार्थ का कटु आभास देकर समाप्त हो जाती है। नाटक का यह वातावरण प्रेम-भावना को सजग एवं सजीव बनाने में विशेष रूप से सहायक हुआ है।